UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182882

UNIVERSAL
LIBRARY

H 81.6 | J86S G.H. 809
जौहरी, भगवन्त शरण
स्वप्न और सत्य | 1953

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.6/J86S Accession No. G.H-809

Author जौहरी, भगवानदास।

Title इलम और सलम। 1953

This book should be returned on or before the date last marked below.

स्वप्न और सत्य

भगवन्तशरण जौहरी

लायल बुक डिपो,
सरस्वती सदन,
लश्कर, ग्वालियर।

प्राप्ति स्थान :—

गयाप्रसाद एण्ड संस,

बांके विलास, आगरा.

(उत्तर प्रदेश)

मूल्य ३)

जून १९५३

मुद्रक —

मॉडर्न प्रिंटिंग प्रेस,

लश्कर ।

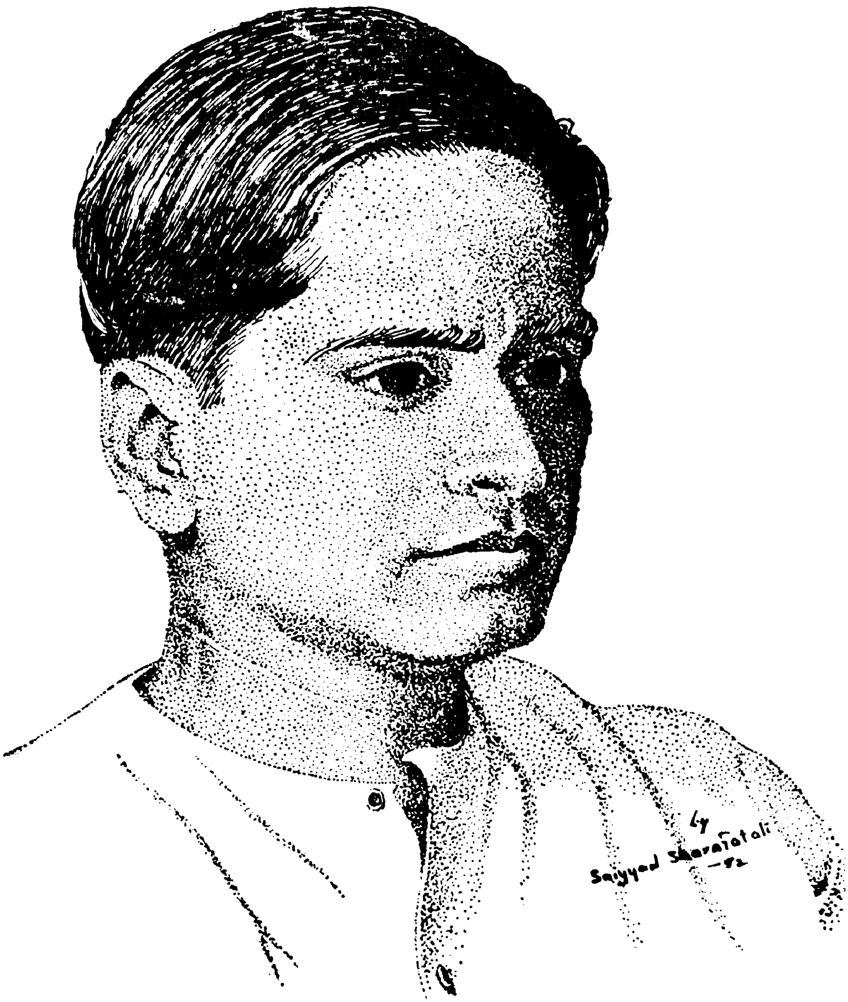

—लेखक

अपनी बात

* * *

ऋग्वेद में कवि को सृष्टि-यज्ञ का अनुष्ठाता कहा है—कवि वाणी का आह्वान इस उद्देश्य से करता था कि उसकी अनुभूति के यशो-रथ पर प्रतिष्ठित मानव-श्रेष्ठता शब्दों के रूप में जन-साधारण की भाव-भूमि पर उतारी जा सके।

'अर्चना' और 'बिदा-बेला' के प्रायः बारह वर्ष बाद मेरा यह तृतीय कविता संग्रह 'स्वप्न और सत्य' प्रकाशित हो रहा है। इस बीच जीवन और जगत ने इतनी करवटें ली हैं कि उनका लेखा-जोखा सम्भव नहीं। एक युग तक मेरा कलाकार मौन रहा या पंगु, इसका उत्तर तो देना ही चाहिये। जब मानसिक और आत्मिक ऊहापोह इतनी प्रबल हो उठे कि भावना अभिव्यक्ति का आलिंगन न कर पाये तो मौन ही एक मात्र सम्बल रह जाता है। परन्तु "लिख मगर लिख एक अक्षर रोज़" के अनुसार राह पर चलता तो रहा हूं।

जीवन का सबसे जटिल प्रश्न कदाचित जीवन स्वयं है। मित्रगण व आलोचक पूछते हैं कि मेरे काव्य व जीवन में इतनी निराशा क्यों और कैसे धँस आई। सोचता हूं, रचना विवशता की देन है, जैसे प्रेम। बचपन में माता-पिता के वियोग ने सब प्रकार की अवस्थाओं को जानने, परखने और पहचानने का अवसर दिया। मैंने इन पैरों पर खड़े होने के लिये अपना आह्वान किया। ममता, स्नेह मुझे मिला ही नहीं, ऐसी बात नहीं, परन्तु मिल कर मानों बिछुड़ गया जिसकी स्मृति और खोजमें जैसे भटकता फिर रहा हूं। मेरी प्रकृति मे जो एक गंभीरता आ गई, परिस्थितियों ने जो आँख खोल कर देखने को बाध्य किया वह सब इसी अनुभूति का परिणाम था। क्या मै यह कहूँ कि इन्हीं सब के भीतर न समा सकने के कारण मुझे लिखने के लिए एक प्रेरणा मिली। निश्चय है, उन सब ने मुझे आगे बढ़ने का साहस दिया है।

पीड़ा समस्त मानव-भावनाओं में सब से गहन है, निराशा में ही व्यक्ति आशा के सूत्र खोजता है तथा अन्धकार का साम्राज्य कभी स्थाई नहीं होता, प्रकाश उस पर विजयी होता ही है। इसी से किसी भी समाज-व्यवस्था में मानव -हृदय के द्वन्द्व के तिरोधान होने की बात कहना भ्रांतिमय है।

खलील जिब्रान ने लिखा है:–

We are sorrowful spirits, and Sorrow is Too great to exist in small hearts, When you laugh, we cry and lament, and he Who is seared and cleansed once with his Own tears will remain pure for ever more.

(हम दुःखी आत्माएं है, और दुःख इतना महान है कि ओछे हृदय मे समा नहीं सकता । जब तुम हँसते हो तो हम रोते और दुःख मनाते है और वह जो झुलस कर अपने ही आंसुओं से धुल कर स्वच्छ हो गया है, वह सदा के लिये पवित्र बना रहेगा ।)

किसी उर्दू के कवि ने भी कहा है:–

इन आंसुओं की हक़ीक़त को
कौन समझेगा ।
कि जिनमे मौत नहीं
जिन्दगी का मातम है ।

इस प्रकार मेरे व्यक्तिगत सुख-दुःखों ने धुएँ की तरह फैलकर मुझे वाणी दी। साथ ही प्रगतिशीलता अट्टहासपूर्ण आन्तरिक क्षतिपूर्ति के रूप में नहीं आई अपितु मेरे जीवन संघर्ष से मंज घिस कर तैयार हुई है ।

आज साहित्य का उद्देश्य मनुष्य का परिस्थितियों से युद्ध है, ईश्वर से नहीं । साहित्य भी आत्म प्रवंचना का एक सम्मानित-क्षेत्र बनता जा रहा है । यहां भी अकर्मण्यता का अभिनय हो रहा है । राजनीति, समाज, साहित्य, संस्कृति और कला आदि जीवन के जितने मार्ग है सभी में केवल आत्म प्रवंचना अपने नाना रूपों में खुल कर खेल रही है । मानवता ठिठुर रही है, उसका रक्त जम गया है, पूंजीवादी शीत का राक्षस उसे निगलने जा रहा है । पूंजीवाद के दोषों से इस युग का कोई भी मानव चाहे वह किसी भी वर्ग का हो, मुक्त नहीं रह सका है । यहां पूंजीवाद के मूल तथा प्रतीकात्मक दोनों स्वरूपों से अभिप्राय है । एतदर्थ मनुष्य की पूर्णता पूंजीवाद के दाहसंस्कार के बिना सम्भव नहीं और जब तक यह न हो पाये जीवन की हर मधुर मुस्कान विषाद से पूर्ण हो उठे तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? इस धरातल पर अपनी रचनाओं का जीवन की पराजय मानूं या विजय ?

युद्ध ने हमारे दृष्टिकोण को आमूल बदल डाला है । आज के मनुष्य के सामने से समाज, देश तथा वर्ग की शृंखलाएं टूट गई हैं । वास्तव में यह समाजिक विषमता का युद्ध है । आर्थिक बंटवारे का युद्ध है, एक वर्ग का दूसरे वर्ग के समक्ष अस्तित्व का युद्ध है । इस प्रकार साहित्य उन प्रवृत्तियों की कहानी है जिसमे मनुष्य के संघर्षों का पूरा २ विवरण है । तीव्रतम संघर्ष के इस युग में अनेक विवशताओं के कारण जब व्यक्ति टुकड़े टुकड़े होकर बँट जाता है, जब बुद्धि और हृदय, आदर्श और व्यवहार ,विवेक और कर्म किसी में परस्पर सामञ्जस्य नहीं बचता तब कुछ कविताओं के माध्यम से कवि के व्यक्तित्व की पहचान कठिन अवश्य है ।

प्रस्तुत कविताओं में अधिकांश की पृष्ठिभूमि मे संक्रांति के रंगों की ही प्रधानता है, संस्कारों और विवेक की टकराहट । कवियों का वर्ग प्रायः मध्यम वर्ग की आधार-भूमि पर उभरा है तथा इस वर्ग के प्राणी को निरंतर बुद्धि का मुँह ताकना पड़ता है । उसके स्वप्न आकाश को चूम रहे हैं तथा चरण पाताल स्पर्शी है । आत्महन्ता की भांति वह अपने अभिशापों से स्वयं दग्ध है एतदर्थ निराशा, सामयिक समस्याएं अथवा दिवास्वप्न ही उसकी धरोहर रह जाते हैं । आधुनिक कविता में रस का स्थान दृष्टिकोण ने ले लिया है । इस युग में एक जीवन-जिज्ञासा हम सबके लिये दुर्निवार हो उठी है । हमारे युग में जीवन सर्वत्र मृत्यु के वेश मे आ खड़ा हुआ है । यह सच है कि प्रयोग व सफल अभिव्यक्ति एक वस्तु नहीं पर कहीं कविता की मौलिक समस्या दृष्टिकोण है, कहीं अभिव्यञ्जना ।

आज के काव्य में आलोचक चाहे सुख की लालसा ढूंढे अथवा यौन परिकल्पनाएं परन्तु मानव की अभिव्यक्ति-प्रेरणा वादों के चौखटों में अत्यन्त निर्ममता पूर्वक न जड़ी जाए तो श्रेष्ठ है । वास्तव में भिन्न भिन्न परिस्थितियां प्रेरणा, कर्म और अभिव्यक्ति पर भिन्न २ प्रतिक्रियाएं करती हैं । यद्यपि कविता का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई व समाज व्यवस्था के बीच के संबंध को स्वर देना है पर उसे समाज से पूर्व स्वयं के प्रति ईमानदार बनना होगा तभी वह कोरा स्वप्न।भिलाषी एवं कल्पना विलासी न रह शोषणसत्ता से लड़ने में समर्थ हो सकेगा । कवि में असाधारण संवेदनशीलता के साथ दीर्घ व गंभीर चिन्तन का समन्वय होता है । वह जिस लयपूर्ण उन्माद (Harmonius Madness) से अनुप्राणित हो उठता है उसकी कवि खरी अभिव्यक्ति ही कला का प्राण है। युगध्वनि से प्रेरित और उद्दीप्त होना की सामाजिक ईमानदारी है । सृजनात्मक शक्ति का मूल सारे जगत के मूल में स्थित आदि प्रेरक शक्ति में है । इस प्रकार कवि अपने छोटे से व्यक्तित्व में उस युग की आत्मा का भार लिए फिरता है ।

मैं अपनी कविताओं के संबंध में क्या कहूं ! मेरा जीवन प्रमाद की एक गाथा बन कर रह गया है । इस संग्रह में मेरी सन् १९४२ से १९५२ तक की रचनाएं संग्रहीत है। 'स्वप्न' मेरी आत्मकेन्द्रिक धारा और निबिड़ आवेग का प्रतीक है तथा 'सत्य' युग की विभीषिका का। 'एक चित्र' शीर्षक से मैंने 'मुझको वह रात याद' 'यह कैसी सनसनी कि सटपट' 'चाय सुबह की नहीं हुई तैयार अभी तक' 'यह कदाचित रात्रि का अंतिम प्रहर है' 'बात परसों रात की है' आदि युग की समस्याओं से अभिभूत रचनाएं लिखी थी । इक्कीसवीं कविता "फिर ले आई वही उलहना मुझे न याद तुम्हारी आती' मानो स्वप्न का सत्य की ओर मोड़ है ।

इस पुस्तक के प्रकाशन का संपूर्ण श्रेय कविवर डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन' को है। बा० रामप्रसादजी अग्रवाल ने इसे प्रकाशित कर साहित्यिक सुरुचि का परिचय दिया है। आवरण सुप्रसिद्ध कलाकार श्री चंद्रेश सक्सेना, भू० पू० आर्ट स्कॉलर, शिक्षा विभाग, भारत सरकार की कृति है। हिली पांडुलिपि श्री वल्लभदास सक्सेना ने तैयार की थी । खेद है कि वे उसे आजप्रकाशित देखने को इस संसार में नहीं । प्रस्तुत पाडुलिपि और क्रम आदि श्री शेख मुईनुद्दीन की सूझ है । मेरा रेखाचित्र प्रिय छात्र सय्यद शराफ़त अली द्वारा निर्मित है । मैं सब का हृदय से आभारी हूं ।

हिन्दी विभाग,
माधव कालेज,
उज्जैन ।

भगवन्तशरण जौहरी

सूची

		पृष्ठ सं०
१	नभ से सूने उर मे किस ने	१
२	जाग रहा लो आज	३
३	स्वप्न मेरा आज थक कर	५
४	यह, सनन सनन यह सनन !	६
५	कहो कि जब तूफान उठेगा	८
६	मुझको वह रात याद,	९
७	कि प्राणों मे युगों का यह तपस्वी	११
८	अंगारों के पथ पर चलने	१३
९	कुछ याद तुम्हे उस दिन की	१५
१०	यह कैसी सनसनी कि सटपट	१८
११	दिन भले ले ले जगत पर	२१
१२	देवदूत सदियों से भारत	२२
१३	पर मिलन का स्वप्न तो	२४
१४	चाय सुबह की नहीं हुई तैयार अभी तक	२५
१५	हम हुए आज़ाद	२८
१६	उस दिन सिहरन झकझोर मुझे	२९
१७	मन छलता जाता है	३१
१८	यह कदाचित रात्रि का अंतिम प्रहर है	३३
१९	आज तुम कितने युगों में	३६
२०	मुझे न था मालूम कि तुम	३९
२१	फिर ले आईं वही उलहना	४१
२२	हत्यारा कहता है	४३
२३	पार कर लम्बी प्रतीक्षा की अवधि को	४४
२४	प्राणों में तूफान उठा है	४५
२५	आज फिर कोई बुलाता है	४७
२६	आज मृत्यु पा तुम्हें महान हो गई	४८
२७	घर घर दीप जले !	५०
२८	सदियों का रक्त आज	५१

२९ अब तो मानो मार्ग रुक चला ५३
३० यह मशाल देश अब स्वतंत्र ५५
३१ दीप जलता, स्नेह का वरदान छलता है ५७
३२ हो चुका सभी समाप्त ! ५८
३३ साथ रहो तुम, केवल ५९
३४ दृष्टि को जब फेरता हू ६०
३५ मैं ही कब तक गीत सुनाऊं ६२
३६ उठता फिर दाह ! ६३
३७ जग मे बिखरना भूल है ६४
३८ भारत की नाभि, मध्य भारत की संस्कृति का ... ६५
३९ स्नेह मिलन की प्रथम ६८
४० बात परसों रात की है ! ६९
४१ मन की बात सुनाता जाऊं ७१
४२ घुमड़ रहा गीत जो अतीत ने सुनाया था ७३
४३ भूल यदि मुझको सको, भूलो ! ७५
४४ तरुणाई बलिदान मांगती ७७
४५ जगत सुखविमुग्ध सतत ७८
४६ ओ जन-मन के गायक ७९
४७ तुम कब मुझे प्यार करती हो ? ८१
४८ ओ हिन्दी के अभिमान ८३
४९ मृत्यु का सम्मान करके ८५
५० मेरे कवि का संसार मौन ! ८६
५१ पत्र आया था तुम्हारा ! ८७

एक

नभ से सूने उर में किस ने इस क्षण जगमग दीप जलाया !

दूर, बहुत ही दूर भव्य प्रासाद तुम्हारा ;
पर्वत, निर्झर, उदधि किए हैं हमको न्यारा ;
तुम से सुरभित पवन व्यर्थ हलचल भर जाती ;
कँप उठती है, उच्छ्वासों से मेरी छाती ;
मादक श्यामा घटा न बरसी पल भर इस वन ;
इन प्राणों की उमस रही है यों ही निस्वन ;

किस का स्नेह छलक आया, अब किसने यह तूफान जगाया !

बुझता जलता एक-एक तारा क्या कहता ;
'विह्वलता तो कुछ पाने वाला ही सहता ;'
आशा का यह छोर युगों से मेरा साथी ;
अटल साधना व्यर्थ किसी की कब हो पाती ;
अपने ही हाथों समाधि का पत्थर रखकर ;
मैं तो अब शव सा निर्जीव पड़ा था भू पर ;

फिर किस ने अञ्चल फैला कर अपने मन का मोह छिपाया !

अन्धकार को प्राणवायु सा श्वासो मे भर ;
मेरे जी का ज्वार शयित था पाषाणो पर ;
लज्जित करने, कली-कली चुन हार बनाए ;
किस बेला मे तुम भी पागल प्रियतम आए ,
पर मैं तो अब चला प्रतीक्षाभुज फैलाए ,
मरीचिका-मृग एक बूंद को ज्यो बिलमाए ;

जन्म-जन्म के सहचर ! अब क्या शेष कि तुमने मान मनाया !

दो

जागरहा लो आज युगो का शोषित भारत ।
जाग, उठी आशा, अभिलाषा, अन्तर्ज्वाला ।।
भूख, अविद्या, दैन्य शृंखला तोड़ रहे हैं ।
युग की तरुणाई नव-जीवन ले जागी है ।।

पराधीनता की समाधि पर लोह-चरण धर ।
शून्य-क्षितिज में किसने कुंकुम-थाल बखेरा ।।
साम्राज्य-पाशों से मुक्त बना मानव को ।
नील-कंठ सा हँस-हँस हिंसा-गरल पी लिया ।।

युद्ध-त्रस्त संसार खोजता रहे चतुर्दिक ।
स्नेह-शांति का सिन्धु पूर्व की ओर बहेगा ।।
सतरंगे नभ की छाया में ध्वजा तिरंगी ।
ज्ञान, त्याग, आदर्श, नहीं अन्यत्र मिलेगा ।।

भौतिकता आपाधापी से पीड़ित जनरव।
पावेगा आत्मोन्मेष फिर आदि-काल का॥
क्रान्ति अहिंसात्मक ले आई नया सवेरा।
कंकालों में मानवता फिर जाग उठी है॥

वसुन्धरा युग-भास्कर को आलिगन मे भर।
ज्योति-स्नात होरही प्रणयके प्रथम-मिलन पर॥
लोक-तंत्र-प्रासाद गगन को चूम रहा है।
जन-मन के सागर मे मानो ज्वार उठा है॥

शून्य, चेष्टाहीन, नया मानव, कब होगा ?
क्या न हमें दायित्व चुकाना है युग-युग का ?
लोक-साम्य के ज्योतित-विस्तृत नव-प्रांगण मे
स्वर्ग कहां तक नहीं उतर आएगा भू पर ?

तीन

स्वप्न मेरा आज थक कर सो गया है !

नियति निष्ठुर प्राण को दावा बनी
प्रकृति कैसी रक्त से दिखती सनी
श्वास का अवरोह गति का मर्म है
क्या इसी से मूक भिक्षा अनसुनी
सूखने से पूर्व कल्मष, अश्रु
फिर भी धो गया है !

प्यार का वरदान सहता ही रहे
विश्व का अभिमान कहता ही रहे
विवशता के द्वन्द्व का इतिहास क्या
अन्तरोदधि सतत बहता ही रहे
कौन पंछी मेघ में छिप
कर सदा को खो गया है !

प्रगति-कोलाहल-सजग संसार यह
प्रणय को था कब नहीं असिधार यह
विनाशोन्मुख सृष्टि पुष्पित सृजन में
व्यर्थ कब जाता कहीं अभिसार यह
सिहरती पल पल व्यथा, यह
क्या इसी को हो गया है !

चार

यह सनन-सनन !
इस पल सरिता
अन्तस्तल तक
कैसी निस्वन !
रश्मियाँ-वीचियो से
कहतीं संदेश
विजन !
टूटे दर्पण के
टुकड़ो सा
क्यों बिखरा मन !
दुलराती फिर
धीरे-धीरे
निस्सीम पवन !
आशाओ, आकांक्षाओं से
चिर ओतप्रोत,
अवनत डाली पर
सहज थिरकते
पत्ते सा,
यह अश्रु-बिन्दु सा
सलज
मूक

उन्मन-यौवन !
जर्जरता के
आलिंगन मे
थक पड़ा खिन्न,
लम्बा-लम्बा पथ
कितना चलना और शेष,
तम से आवृत पुतलियाँ
शून्य से टकराती,
कितनी निर्ममता
जीवन मे कितनी थकान !
तारे असख्य
स्वप्नो के रेखा-चित्र बने
जाने कब तक
यो
आँख-मिचौनी खेलेगे !
जग की सीमा से
दूर पडा
पाषाण शिथिल,
कितना शीतल
कैसा कोमल
जननी के अचल-सा
स्नेहिल,
मेरा साथी !

पांच

कहो कि जब तूफान उठेगा,
तुम तो मेरे साथ रहोगे !
मेरी आशा का नन्दन-वन
सिसका उठा प्रतिपल मन ही मन,

घिरे हुए बादल काले जब
ले उर मे विद्युत सी तड़पन;
प्रलय-ज्वार के तुमुल नाद मे
क्षण भर तो इस ओर बहोगे !

सघर्षण की वही कहानी
उबल उठी है फिर मनमानी;
आज रक्त के फव्वारों मे
बरस रही ज्वाला तूफानी;

विश्व विमुख ही रहे किन्तु
प्रिय ! तुम तो मन की बात कहोगे !

छः

मुझको वह रात याद
मुझको वह प्रात याद
पलकों मे घुमड़ रही
रिमझिम बरसात याद,
उस दिन उस छप्पर में
हिमदग्धा कलिका सी
देखी कन्या एक !
कैसा वह आर्तनाद
जिसने ली छीन नींद
मेरे मन-जीवन की;
माता की पड़ी लाश
कफन आदि से निराश
वह निरीह !
रात बीत गई
पुतलियों मे हुआ प्रभात,
मां के वक्षस्थल पर
प्रतिमा सी झुकी हुई
देखी कन्या एक !
जब मैंने झकझोरा
पाया उत्तर तत्क्षण,

सब कुछ मिल सकता है
यदि बेचूं यह यौवन,
नारी के जीवन का
क्या यह ही
मोल-तोल !
चरणों पर झुक रोया,
मेरी वह पूज्य बहिन,
किया दाह कर्म शीघ्र
जब वापिस लौटा तो
मेरे मन-प्राण लिए
मेरा आदर्श लिए
मेरा उत्साह लिए
मेरी ही आह लिए
चल दी किस ओर सहज
ज्ञात नहीं है अब तक !
मेरा अपराध एक
मैं भी जो युवक !

सात

कि प्राणों में युगों का
यह तपस्वी मौन बैठा है!
उषा छिटकी, कली विहँसी,
पँखुड़ियों ने उघाड़ा दिल;
किसी का मूक आवाहन,
किसी का स्निग्ध अन्तस्तल;
कहां वह नभ, कहाँ पृथ्वी,
भला सकते कभी हम मिल;
कि हो व्यवधान कितना ही
मिलन-सुधि से हृदय शीतल।

छिपा कर स्नेह सरिता सूख
बैठी तप्त शोकाकुल;
हिलोरें खो, दरारें पड़ गईं
आँखें झुकी छलछल;
न जाने कौन गह्वर में
सुपरिचित मान बैठा गल;
घटा घहरी कि रस से
विकल हो आया पुनः अञ्चल;

कुमुदिनी बन गई निश्वास
पहुँची चन्द्र तक जब चल;
कहाँ दूरी, कहाँ देरी, कहाँ
का मौन, क्यों हलचल;
उसी क्षण चन्द्रकिरणों ने
सुधा ढाला, किया पागल;
कहा'व्याकुल न हो, दिन
बीतने दो फिर मिलेंगे कल'

बताओ प्राण ! मैं ही क्यों
रहूं प्यासा विरह विह्वल;
भला दूरी किसी को पृथक
रख सकती, वृथा है छल;
हुआ जो दूर जितना
चाह उतनी ही हुई बोझिल;
न जीवन में कभी भी क्या
चरण चुम्बन सकेगा झिल;

न जाने शोक सा आसन
लगाये कौन बैठा है !
कि प्राणों मे युगों का
यह तपस्वी मौन बैठा है !

आठ

अङ्गारों के पथ पर चलने
वालों को विश्राम कहाँ है ?

तरुणाई का वेग कभी भी मूक बैठने वाला होगा ?
माँ के अञ्चल के रक्षक को क्या न सालने वाला होगा !
स्वयं खिसकती ही जाएँगी भेद-भाव की अडिग-शिलाएँ,
शनै-: शनैः गलते जाएंगे जन-जन के सन्ताप-व्यथाएँ,
रामराज्य है, स्वप्नों का संसार अभी तो दूर पड़ा है,
युग -युग की दुर्दम पीड़ा का स्तम्भ सदा की भांति खड़ा है,
घोर-तमिस्र भरी रजनी मे दीप जलाने वाले, आओ,
स्नेह-ज्योति से जन, मन का उर आज स्वर्ग से श्रेष्ठ बनाओ,

ठोकर मे संसार बसाये
वह यौवन उद्दाम कहाँ है !

तुम को यह अभिमान कि अब तो कुचल चुके विषदग्ध गुलामी,
सदियों के अभिशाप घुल चुके, हम गौरव के पुञ्ज, अकामी,
शस्य-श्यामला भूमि किन्तु सम्मोहन का स्वर लेकर प्यासी,
नए रक्त की धार सींच सकती यौवन की भग्न उदासी;
जिससे जग जागे वह वीणा बोलो कब तक मूक रहेगी,
श्वासों से भूकम्प जगाने वाली ज्वाला कुछ न सहेगी,

अग्र-दूत ! खँड़हर पर तुमको दुर्ग बनाना अभी शेष है,
शोषण के चंगुल से जग को मुक्त दिखाना भी विशेष है;

तूफानो मे मुसकाने वाले
युवकों का धाम कहाँ है ?

वज्रो को पिघलाकर निर्मित होने वाली वस्तु जवानी,
विद्युत् की तड़पन मुसकाए वह जीवन की अमर कहानी,
चट्टानों सा अटल और निर्भीक हृदय हो जिसकी थाती,
प्राणों मे विद्रोह उठाने की गरिमा जिसमे हहराती,
बाधाओं-आघातों से जो नवोत्साह निर्माण कर रहा,
कायरता-कातरता मे जो नवजीवन, नव प्राण भर रहा,
प्रलयोन्मुख जग मे नवरचना का संदेश फूंकता जाए;
जिसके इंगित पर युग का कोलाहल, आवाहन हो जाए;

जय श्री जिस पर बलि जाती हो
वह मनसिज अभिराम कहाँ है ?

कब तक देख सकेगा मानव, नभ-भू को यों होता डगमग,
यौवन का आग्रह इतना ही दैन्य-दुखों से सूना हो जग,
'जीना, जीवित रहने देना ही' सुख की आधार -शिला है;
जन-साधारण की उन्नति मे अन्तस्तल का प्यार खिला है,
अर्थाभाव, विषमता ने खलबला रखा है जीवन का स्वर,
क्यों न उलट दें उस तख्ते को जिससे अर्थ-पिशाच बना नर,
बलि-पंथी ! बंदी दुनिया को एक बार फिर मुक्त बनाओ,
इस बगिया मे स्नेह, शान्ति, सद्भावों के ही पुष्प खिलाओ,

जहाँ पराजय तक सुखप्रद हो
ऐसा भी संग्राम कहाँ है ?

नौ

कुछ याद तुम्हें उस दिन की जब हम प्रथम मिले ?
अल्हड़ शैशव के उपवन मे दो फूल खिले ।।
भोलापन उतरा था– भू पर औ' प्रथम बार ।
रवि -पंकज से कह गया, अरे उठ देख प्यार ।।
वह सरल; सहज, उन्मत्त प्यास के प्रहर मौन ।
युग-युग से अब तक पूछ रहे 'कुछ दो न, दो न' ।।
भावना-ज्वार मन मे प्रति-पल लेता हिलोर ।
पर लाँघ सकी होतीं युग युग का लाज-छोर ।।
शब्दों ने जाना नहीं तुम्हारा हृदय-भार ।
'तुम क्यों.....' पर अब इन बातों मे है कौन सार ।।
मन की लहरे, मन मे ही मिट रह गईं हार ।
थे अधर हिले पर सुन न सके हम चीत्कार ।।
तुम चिर सलज्ज औ' मैं कितना संकोच-शिथिल ।
बलिवेदी तक सब चाह, रह गए क्यों ढिलमिल ।।
दुविधा के तम को चीर न कोई बोल सका ।
उफ़् पीड़ा -सी वह ग्रन्थि न कोई खोल सका ।।
कर्मण्य न माना होता मुझको यह कुछ था ।
पर स्नेह-हीन, निष्प्राण, तुम्हारे सम्मुख था ।।
कह चुकीं स्वयं, विश्वास कभी भी हो न सका ।
वह मूक बवण्डर तक अंचल मे खो न सका ।।

युग-युग कसके दुर्भाग्य-कहानी यह रह-रह ।
रे भग्न-हृदय, इस जीवन में यह भी सह-सह ।।
पर छोड़ो भी, अपराध तुम्हारा इस मे क्या ।
मैं पूछ सका होता उस उर का मधु-लेखा ।।
तुम तो वरमाला लिए खड़ी थीं स्नेह-मग्न ।
जो झुक जाता यह मस्तक, क्या थे शूल-विघ्न ।।
तुम तो विद्युत-सी कौंध-कौंध रह जाती थीं ।
कुछ बढ़ूँ, लुप्त, जाने क्या-क्या कह पाती थीं ।।
फैला कण-कण मे प्रातकिरण की-सी लाली ।
क्यो लौट गईं; इस द्वारे तक आ मतवाली ।।
रक्ताभ अधर, फुसफुसा, रह गए स्वयं मौन ।
फिर इस विनाश का दोषी, दोषी कहो, कौन ?
पर अब भी इन बातों मे कोई शेष सार ?
लज्जा नारी से यों लिपटे, मैं गया हार ।।
पर मैं तो उभरा नित्य, न तुम पहिचान सकीं ।
इस सजल मोह को तुच्छ, कहो, अनुमान सकीं ।।
मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ा, रहीं तुम और मौन ।
था द्वार बन्द कर गया मौन, कह गया, यों न ।।
तुम सिहरीं, सिमटीं, सिसकीं जान न पाया क्यों ।
क्या लाज मौन ही रहती, यह समझाया, क्यों ?
लो आज मानता; कैसी यह हो गई भूल ।
जो बन बैठी जीवन का इतना दुसह शूल ।।
यदि समझ सका होता लज्जा को सत्य, सरल ।
तुम क्या मानोगी, पीता हँस-हँस विषम- गरल ।।
आमन्त्रण क्या, संकेत एक पल कर न सकीं ।
युग-युग के बेबस आत्मदाह तुम हर न सकीं ।।
मैं राह देखता रहा, रहा चिर भग्न, त्रस्त ।
मेरी गति को जड़ किए रहे वे प्रहर व्यस्त ।।
प्रतिपल कहता था, बोल उठे लो, मौन पलक ।
क्यों पढ़ न सका वरदान जो कि यों गया छलक ।।
युग की स्वप्निल-साधों को सहसा चूर किए ।
तुम चल दीं उस दिन रख इस उर पर चरण प्रिए ।।

तुम चाहे मत विश्वास करो आवाहन पर ।
पर आज इसी से फिर झंकृत हैं मेरे स्वर ।।
पर अब समाधि पर आई हो दीपक रखने ।
जो भूमिसात् है वृक्ष उसी के फल चखने ।।
जन्मान्तर-तप-वर अगर पा सका अब भी मैं ।
सुख कितना जो मल्हार गा सका अब भी मैं ।।
मन आज तरङ्गाकुल कितना है, क्या कह लूं ।
क्षण भर भी क्या कम जो सरिता-सागर बह लूं ।।
प्रणयोन्माद, जब भी उफने मतवाला है ।
पगली, उसमें कैसा असमय, वह हाला है ।।
आत्मोपलब्धि कब भला देखती साँझ-प्रात ।
क्या हुआ, बीत जो राह देखने गई रात ।।
अन्तिम क्षण पर भी जान सका मादक-संदेश ।
मैं धन्य हुआ, जन्मों के मिट तो सके क्लेश ।।
उतना दूं तो, जो भी है जितना मूल्यवान ।
मैं अवधि-दग्ध क्यों बनूं, सत्य का मुझे ज्ञान ।।
हम अलमस्तों को रूप और यौवन है क्या ।
पाना ही है तो जन्म-मृत्यु-जीवन से क्या ।।
मैं कब जाना तुम विवश रहीं, या चिर-तटस्थ ।
प्रतिध्वनि तक से वञ्चित, हो बैठा आत्मस्थ ।।
वह दृष्टि कहाँ जो देख सके सरिता का तल ।
वह हृदय कहाँ जो नापे अन्तर की हलचल ।।
कर कहाँ, चरण की रज तक अद्यपि मिल न सकी ।
अंचल कैसा, वह विरल दृष्टि तक झिल न सकी ।।
मैं सतत देखता रहा तुम्हारा मुख निर्मम ।
झंकृत हो पाये तार कहाँ, कैसी सरगम ।।
हम लेकर बैठे रहे घोर आदर्शवाद ।
अब क्यों रोता है श्वासों मे अपना प्रमाद ।।

धिक्कार हमें धिक्कार,
अन्त तक मूक रहे ।
जग का भय ही खा गया,
सदा यह हूक रहे ।।

दस

यह कैसी सनसनी
कि सटपट होती जातीं
बन्द दुकाने,
भाग रहे हैं
भय से उन्मन, पीले मानव,
ऐसी जल्दी
मानों सर पर पाँव रखे हों!
चाय–दूध की
नमक–तेल तक की दूकाने
बन्द हो गईं,
ऐसा विद्युत्वेग
कि कोई पल भर मे
सब झाड़ गया हो!
मेरी मुन्नी
दुबली-पतली
हाड़ों की कंकाल
अभी जैसे-तैसे बच पाई है
वह
रोग सूखिया के प्रकोप से,
दूध बिना कैसे चुप होगी

सो पाएगी!
मैं चिन्ता में डूब रहा हूँ
कंठ-कंठ तक।
झुँझलाई गीली पलकें ले
चूस रही वह रह रह
अपनी जर्जर माँ का
सूखा अञ्चल।
सुबह हो गया उधर
फैलता चला उजाला,
चलते जाते
यंत्रों से निष्प्राण,
किराए के टट्टू
मजदूर।
किन्तु क्या देख रहा हूँ
ये फौलादी टोप लगाए
अफ़सर, उनको लगे पीटने,
नाच नचाने,
'कहाँ चल दिये,
शामत नहीं तुम्हारी आई?
दिन चढ़ने से क्या होता है।
कर्फ्यू-वर्फ्यू अभी
टूटने वाला है क्या?
और खूब यह रंग,
यहाँ तो राशन भी चुक गया,
आज ही होने का था
हफ्ता पूरा।
और पेलने लगे डंड
पेटों में चूहे,
आस-पास के घिर आये
दो चार मित्र
सब भूखे प्यासे,
जमा रहे हैं

ताश और शतरंज।
युग का यह वरदान कि
यह आदम का बच्चा
अपने दड़बे में यों
बन्दी बना पड़ा है।
थरथर यह-वह कांप रहे हैं,
सदर राह पर, निरपराध ही
भोंक दिया है छुरा और
मर गए तीन,
इस कारण ही तो
लगा हुआ है ऐसा कर्फ्यू।
दफ्तर मे आराम कहाँ था,
जुत जाता था रोज सुबह ही,
ज्यों कोल्हू का बैल बिचारा
अब अच्छा है
काम नहीं है
दाम नहीं है
भूख नहीं है
प्यास नहीं है
कोई आज उदास नहीं है,
कुछ भी तो अब पास नहीं है
मुझसे वह चिड़िया अच्छी है,
मुक्त-गगन मे उड़ती फिरती,
अपना दाना ले आई है
चुगा रही है अपना बच्चा
मैं साधन-सम्पन्न
आज कितना बेबस हूँ।

ग्यारह

दिन भले ले ले जगत, पर
रात किस की है!

शून्य नयनों में किसी की साध, कैसा चित्र,
पलक मुँदते खोलते कैसा विरोध, विचित्र,
श्वास में, उच्छ्वास में, अधिवास में यह, मित्र

मौन संकोची कहेगा
बात उस की है!

फिर घटा घिरती रहेगी, मेघ बरसेगा,
'पी कहाँ' की ध्वनि लिए पर कौन तरसेगा,
उन खुली सी पुतलियों मे कभी सरसेगा,

शिशिर ने खोले नयन
बरसात खिसकी है!

बारह

देवदूत ! सदियों से भारत था पीड़ित निष्प्राण ।
फूंक दिया तुम ने नवजीवन जागा स्वर्ण-विहान ।।
तुम आए, मानो ईसा ने लिया पुनः अवतार ।
तुम में गौतम, बार-बार जग ने देखा साकार ।।
सत्य-अहिंसा के शस्त्रों से जीत लिया संसार ।
घायल मानवता ने पाया तुम से प्यार-दुलार ।।
जियो हजारों वर्ष, सुनाते रहो शान्ति के गान ।
मन्त्रमुग्ध करता ही जाए मादक स्वरसंधान ।।
हमें याद है, त्याग-तपस्या, वे दुष्कर बलिदान ।
एक तुम्हारे इंगित पर मर मिटने का अरमान ।।
आज़ादी का नन्हा पौधा रक्त -दान से सींच ।
हँसते-हँसते जिन वीरों ने ली थीं आँखे मीच ।।
उनका वह उत्सर्ग जगा कर प्राणों मे अभिमान ।
जगमग करता रहा और अब बन आया वरदान ।।
आहुतिदाता यज्ञ तुम्हारा पूर्ण हुआ प्रियप्राण ।
इसकी शुचि सुगंध से अग-जग प्लावित है भगवान ।।
पुण्य-पर्व की इस बेला में तुम साधन, तुम साध्य ।
अभिशापित, विभत्स मानव के एकमात्र आराध्य ।।
पश्चिम के डूबे सूरज ने देखा पूर्व-प्रभात ।
आखिर बीती ही कल्मष से ओतप्रोत वह रात ।।

आज पितामह ! लाल किले पर झंडा गड़ा हमारा ।
हम ही शासक, हम ही शासित, सब अधिकार हमारा ।।
अरे पुजारी ! सिद्धि सामने खड़ी हुई मुसकाती ।
माता अपनी बाँह पसारे तुम को पास बुलाती ।।
किन्तु आज भी कोलाहल से बोझिल है निश्वास ।
हम कृतघ्न तुम को न दे सके चैन और विश्वास ।।
धन-प्रभुता ने बना दिया है हमको क्यों मदमत्त ।
लोलुप, रक्तपिपासु, मारने-मरने को उन्मत्त ।।
भाई-भाई साथ न रह पाएँ यह क्या व्यवहार ।
कब तक ऐसे चला करेगी आपस मे तलवार ।
तुम ही मे यह शक्ति कि होवे एक बार फिर शांति ।
युग-युग जीओ, मार्ग दिखाओ, मिटे कालिमा-भ्रांति ।।

[अखिल भारतीय रेडियो बम्बई के सौजन्य से]

तेरह

पर मिलन का स्वप्न तो मुझ से न छीनो !

क्या यही सच है कि मैं ही दूर भागा;
गूंजती ध्वनि यह कि तुम से गया त्याग;
आँसुओं के युग चुके, मधुमास जागा;

आज तुम दुर्भाग्य के कण्टक न बीनो !

सोचता हूँ साध्य सुख या साधना ही;
तृप्ति में सोई व्यथा अवमानना की;
मान भी हो किन्तु सहचर याचना भी;

कुछ न दो पर आस का अंचल न छीनो !

चौदह

चाय सुबह की
नहीं हुई तैयार अभी तक
आ धमका है
नई ख़बर वाला
वह पेपर
पढ़ता क्या हूं
क़त्ल हो गये, लामा
उस लद्दाख नगर के
छीन ली गई
बुद्ध-मूर्तियां
रत्न-जटित सब,
और पांच सौ
बौद्ध-भिक्षु
बलिदान हो गये
बर्बरता की उस वेदी पर
काश्मीर की यह घटना
कितनी रोमांचक
कैसी दाहक !
मानव इतना भी निर्मम
हो सकता जग मे,

इसकी साक्षी !
कौन धर्म यह सिखलाता है !

विगत साधुजन
और नारियों की हत्याएँ
क्या कहती हैं ?

मार-काट की
लूट-पाट की
द्रोह-दाह की
दुराचार की
बातें सुन सुन
पका कलेजा
'गाज़ी' बनने वाले
जो धर्मान्ध व्यक्ति हैं
उनको
कैसे समझा पाएँ !
आज़ादी का मूल्य
न जाने कब तक देंगे
इन सिक्कों में !

एक साल की बात
आज फिर घुमड़ रही है
एक चित्र वितरित होता है,
जिसमें दिखलाया जाता है
दृश्यपश्चिमी 'पंच-आब' का
दिगम्बर महिलाओं के
जुलूस का जमघट !
और पुतलियाँ अंगारों सी
तड़क उठी थीं !
'शरियत शासन' पर
चलने वालों से पूछें
कहाँ तुम्हारे धर्म-ग्रन्थ
'सिखलाते यह सब

ग्रौर स्वयं भी ग्रपना
'कोमल' हृदय टटोले,
प्रतिहिंसा का
बर्बरता का
घोर हलाहल
हममे भी तो
नहीं छिपा है !

पन्द्रह

हम हुए आजाद पूरा हो रहा है वर्ष ।
सिसकियों के बीच डूबा जा रहा है हर्ष ।।

आज मंज़िल पर खड़ा इठला रहा तूफान ।
शक्ति लो ! कर्त्तव्य का अब कर रही आह्वान ।।

राह नूतन, है घिरा संघर्ष, जगमग दृष्टि ।
तुम्हे अपने रक्त से करना सुधा की सृष्टि ।।

चलो, बस चलते रहो, गति जिन्दगी का ध्येय ।
चरण-चिन्हों को तुम्हारे आंकता है श्रेय ।।

सोलह

उस दिन सिहरन, झकझोर मुझे
मदमाते स्वर मे यो बोली !

लो फिर से आया है वसन्त
फिर एक बार आई होली !

कलियों को उकसा गया कौन,
पिक ने मिश्री-सी क्या घोली !

रन्ध्रों ने आसावरि फूंकी,
इतराई भ्रमरो की टोली !

मुझ वीतराग के यौवन की,
सूनी निराश पीड़ा डोली !

मेरी सजीवता सोई है,
मेरी आतुरता तो भोली !

किस मधुर श्वास ने उमड़-घुमड़,
मेरे मन की गठरी खोली !

किसने मेरे स्वर मे स्वर भर,
जीवन-ज्वाला को यों तोली !

मैं एक रंग रँग चुका, मुझे,
केसर ही क्या, क्या है रोली !

भटका ही फिरता रहा, किन्तु,
फिर भी खाली मेरी झोली !

मैं ही इस पथ से दूर चला,
चिर अन्धकार ही हमजोली !

मैं बीत चुका, मैं तो अतीत,
जो कुछ भी होना थी, हो ली !!

सत्रह

मन छलता जाता है !
सन्ध्या की अंतिम किरणों मे
मानो कुछ पाता है !

नभ का सूना हृदय
झाँकता सागर मे प्रतिछाया,
पल भर का यह मिलन
युगों का क्यों बिछोह ले आया,
स्वप्नों के महलो मे रमना
ही फिर क्यों भाता है !
सन्ध्या की अन्तिम किरणो मे
मानो कुछ पाता है !

राग, विराग, मुक्ति, आकर्षण
का यह द्वन्द झिलेगा ?
जलते आतप मे आशाओ
का भी पुष्प खिलेगा ?
आने वाले भूल न, कोई
उधर अभी जाता है !
सन्ध्या की अंतिम किरणों मे
मानों कुछ पाता है !

हो हो सजल निराश, आज भी
खुली हुई हैं आँखें,
दूर देश के पथिक न भूलो
ये ममता की पाँखे,
ठुकराते जाना भी सोचो
कोई तो नाता है!
सन्ध्या की अंतिम किरणो मे
मानो कुछ पाता है!

तारो के संकेत न तुम
तक कभी पहुँच पाएँगे,
ओस बिन्दु उस मूक विवशता
का उत्तर लाएँगे,
सुधि का छोर लिए, नौका पर
भी कोई गाता है!
सन्ध्या की अन्तिम किरणो मे
मानो कुछ पाता है

अठारह

यह कदाचित रात्रि का अन्तिम प्रहर है !
मैं उलझता, विरमता, थकता चला हूँ
प्रेयसी निद्रा, किए अभिसार
मानो दूर भागी जा रही है !
बोझ चिंता का लदा ज्यों चीरता आरा कलेजा
चिर-प्रतीक्षित आ रही तारीख पहली
फिर सुबह कल,
गिन सकूंगा नोट कुछ छोटे-बड़े
पल भर, लिए अभिमान, सुख, गौरव, तितीक्षा
दूसरे क्षण, अठत्तर देना किराया
बढ़ रहा था जो देवि सुरसा के वदन सा
छोड़ने वाला नहीं इस बार वह 'भय्या' अमानव,
और वह चालीस बीमे की तिमाही...

पल रही दुर्गन्ध-बोझिल-शोषणान्तर्गत 'प्रगति' यह
एक भी सौ में न उपभोग कर पाया
कि पेंशन चीज़ क्या है ।
क्यों न पत्नी और बच्चे भी मनाएं मृत्यु मेरी,
बहुत संभव है उन्हें कुछ दिन मिले
टुकड़े तरमतर !
देख पाएँ,
वस्त्र भी इन्सान की रंगत बदल देते !

वे कुसुम, आकाश के जो स्वप्न मे
मसले गए है,
कदाचित खिल उठे
क्षण भर मृत्यु के पश्चात् !
याद है वह दिन मुझे
जब पूछ बैठा, मैं किसी
एजंट से यह,
आत्महत्या से रुपये वे
डूब तो ना जाएँगे
जो धरोहर से बने आधार मेरे !

किन्तु विषयान्तर हुआ ही जा रहा है ।
दूध, नौकर और चन्दों की रकम देना अलग है ।
चुकानी है कुछ उधारी सदय मित्रों की
बचाते जो लाज मेरी
मास के तीसरे चौथे सलज सप्ताह मे ?
उधर रॉशन, इधर कपड़ा
नमक, घी, तेल का चक्कर !
फटे जूते लिए मुन्नी कहो कब तक न झींके फिर ?
न धोती आठ वाली बीस मे
भी कहीं मिल पाती !
शकर से, आठ दिन भी
चाय की प्याली न गरमाती !

बहुत सन्तोष का गौरव हृदय मे लहलहा पाया ?
हमारे भाग्य ने सौभाग्य का भी द्वार खड़काया !
नियति क्या, कर्म क्या, दुख क्या,
प्रभाषण बहुत सुन्दर है !
आज पीड़ा मे नहीं है मुक्ति मानव को
न जब तक दूर हो आर्थिक विषमता !
और जब फिर सोचता हूँ
यह कि मेरा देश अब स्वाधीन भी है !
साँस में मेरी गमक उठते

पवन उनचास मानो !
कौन दिन होगा यहाँ
भर पेट जब खाना मिलेगा ।
बुद्धि-जीवी या श्रमिक जाने
कि वह भी आज है
स्वाधीन !

उन्नीस

आज तुम कितने युगो मे, एक
पल को मिल गईं सुकुमारि !

मैं मूक सा
विद्रूप था
ले शून्य उर मे एक हाहाकार !
यह संसार ?
मुरझा बैठा पूर्व खिलने से नशीला प्यार !
जो मूढ़ है, उद्भ्रांत है, जिसका नहीं आधार !
दुख का न पारावार !

वह दृष्टि !
पलक गिरते ही सुनहले पंकजों के ढेर की सी सृष्टि !
मैं चकित
वंचित
थकित सा
समझ ही पाया न
यों कैसे मरुस्थल पर
उमड़ आई
सुधा की यह छरहरी वृष्टि !

दूसरे क्षण दूसरा ही कूल !
और मैं उलझा हुआ
कुछ डूबता सा
उभरता सा
मचलता सा
सोचता ही रहा विधि की भूल !
प्रणय-पथ पर फूल की आकृति लिए
क्यों बिछ रहे ये शूल !
भाग्य ही प्रतिकूल !

फिर भ्रांति !
आज अन्तर मे
घहरती
घुमड़ती
कुछ विलपती सी
भावनाओं मे मची है क्रांति !
मैं चिरन्तन पथिक
चलता ही चलूं
क्यों मुझको मिले विश्रान्ति !
प्रेम कर फिर चाहते हो शान्ति ?

यह दुसह व्यवधान !
आज वह साकार यौवन
रूप से परिणय किए
यों हुआ अन्तर्ध्यान !
फिर अहर्निशि
एक वह ही ध्यान !
प्रेमियों के देश मे
कब पाप का या
पुण्य का ही ज्ञान !
वह सरस मुस्कान !

श्रौर विद्युत्-रेख सा वह मिलन
विछुड़न भार ले
छलका नयन से वारि !
आज तुम कितने युगों में
एक पल को
मिल गईं
सुकुमारि !

बीस

मुझे न था मालूम कि तुम इतनी जल्दी ही भूल सकोगे ।
आज़ादी मिल गई इसी अभिमान-दौल पर झूल रहोगे ।।
आज देश की दशा, तुम्हारा धर्म तुम्हे क्या नहीं रुलाता ।
देखो, वह चीत्कार हृदय को बेध तुम्हे उस पार बुलाता ।।

अभी अभी तो गरम पड़ी है मिट्टी पावन राजघाट की ।
और देश की तरुणाई तय्यारी मे है ठाठ-बाट की ।।
उसे क्या पता, किस ईसा ने सूली को चूमा, अपनाया ।
स्वतंत्रता के शेष मूल्य को नीलकंठ ने स्वयं चुकाया ।।

उस गौतम ने राज-पाट से मुँह मोड़ा, वनवास ले लिया ।
दीपक तूफ़ानों से लड़ता रहा, और सन्यास ले लिया ।।
उस दधीचि ने अस्थि-समर्पण कर असुरों से तुम्हे बचाया ।
पर तुमने उसके ऋण-आदेशों का बदला खूब चुकाया ।।

याद करो उन दीवानों की, जो हँस-हँस बलिदान हो गये ।
रक्त-दान की वेदी पर, जो यौवन का अभिमान हो गये ।।
क्यों न आज की पीढ़ी सीखे करना निज शोणित से तर्पण ।
हम भी इसी देश की संतति, कर डाले सर्वस्व समर्पण ।।

लाखों ही नर नारी तड़पा करते मुट्ठी भर दानों को ।
उनकी आहें हिला रही है महलों के भी अरमानों को ।।

तलवारे भाई-भाई की, काट रहीं अपनी ही बाहें।
सम्प्रदाय का विष पनपा है, लथपथ है जीवन की राहे ॥

'मेरा देश' शब्द सुनते ही किसका सिर ऊँचा न उठेगा ?
किस धड़कन का गर्व, हिमालय से टकराने नहीं बढ़ेगा ?
मातृभूमि के चरणो पर, यौवन का ज्वार खिले, मुसकाए।
पास-दूर सर्वत्र देश की वायु, स्नेह-अञ्चल फहराए ॥

अगर जूझना ही न जान पाई तो तरुणाई ही क्या है।
जिस मस्तक ने कफ़न न बाँधा, मुक्ति द्वार का क्या पहरा है ॥
कौन देव था जिसे नहीं असुरों से कभी पड़ा हो पाला ?
सूली पर ही तो सरमद ने हँस-हँस पिया ज़हर का प्याला ॥

अब शब्दो का समय कहाँ है, आओ प्रगति-पंथ पर चल दे।
ज्वालामुखी भरा हृदयों मे, मर-मिटने को प्राण विकल है ॥
आगामी कल राह देखता है उत्सुक हो तरुणाई की।
अन्धकार कब तक थामेगा आभा युग की अरुणाई की ॥

इक्कीस

फिर ले आईं वही उलहना, मुझे न याद तुम्हारी आती!

आज लग रहा, उल्टी बाते कह, सुनने की जी मे आई।
मन के परदे खुले, तुम्हारी पलके रह जाएँ शरमाई।।
अच्छा, आग उभर ना आए फिर सँभालना दूभर होगा।
इस रहस्य का तुम्हे पता क्या और कभी भी हो न सकेगा।।
शुभे! भूल ही पाता तुम को तो पीड़ा-संताप न होता।
इतना ही जो हो पाता तो यो जीवन अभिशाप न होता।।
केवल इतना जान सका हूँ तुझसे तेरी सुधि प्यारी है।
आज उसी का अञ्चल थामे श्वासों का चलना जारी है।।
नियति अगर कुछ दुख देती है, सहने का बल साथ लगा है।
याद तुम्हारी से उन्मद हो, फिर-फिर जीवन-दीप जगा है।।
सुधिभीनी निश्वास कहा करती थी आखिर कभी मिलोगी।
पल भर को ही चाहे जैसे, इन अधरों के बीच खिलोगी।।
अब चाहे बिजली भी टूटे, मै हँसते-हँसते मिट जाऊँ।
अन्तिम बेला मे भी जग को ऐसा मादक राग सुनाऊँ।
जिसकी तन्मयता से बेसुध मन फिर क्या से क्या हो जाए।
कौन जानता है उस क्षण ही पंछी लोट-पोट हो जाए।।

भला स्नेह बिन किस बेला तक जल सकती है सूनी बाती!
फिर ले आईं वही उलहना, मुझे न याद तुम्हारी आती!

ग्रौर मान लो कह दूं मुझको जरा न याद तुम्हारी ग्राती ।
तो भी उसे सत्य ही समझो यही सरलता हमे सिखाती ।।
ग्राज चुम्बनों मे रमने का मुझको ही ग्रवकाश कहां है ।
ग्रालिंगन में बाँध रखे वे मृदु मृणाल भुजपाश कहाँ है ।।
इससे कहता हूँ, कहने दो फटती जाती मेरी छाती ।
इन तेंतीस करोड़ों की सुधि लिए भैरवी, वाणी गाती ।।
दुनिया के इतिहासों ने इस दिन का स्वप्न कहीं देखा है ।
मानवता की वेदी पर यह कैसी खिची कलुष-रेखा है ।।
भारत के ही ग्रन्न वस्त्र से दुनिया ने पोषण पाया है ।
उसी हमारी शस्यश्यामला भू पर यह शोषण छाया है ।।
दाना-दाना हीरा मोती बन हम को तरसाता जाता ।
शोषक भी क्या हो सकता है शोषित मानवता का त्राता ।।
तन ढकने को वस्त्र न पा कर कितनी बहिने प्राण दे चुकीं ।
ग्रौर पेट की ज्वाला पर ग्रनगिनती गौरव-ज्ञान दे चुकीं ।।
तुम ही कहो, ग्राज मै किस की याद करूं, मेरी कल्याणी ।
ग्रौर किसे शब्दों मे गूंथे, मेरी कविता, मेरी वाणी ।।

लो फिर ग्रार्तनाद का कम्पन मेरी विह्वलता सुन पाती ।
फिर ले ग्राई वही उलहना मुझे न याद तुम्हारी ग्राती ।।

बाईस

हत्यारा कहता है 'मुझको नहीं जरा भी दुख है'।
वज्रपात पर, महाप्रलय के, विश्व, जब कि सम्मुख है।।
जरा-मरण से मुक्त पुरुष को कोई क्या मारेगा।
विजय घोष के निकट शोकनत मरण स्वयं हारेगा।।

मानवता घायल, लथपथ है, आज मेदिनी डोली।
मानो बापू की छाती मे नहीं लगी है गोली।।
श्वास-श्वास मे अमर हो गई वह प्रकाश की रेखा।
जब कि अमरता को चरणों मे हँस हँस लुटते देखा।।

'नोआखाली औ' बिहार, गढ़ मुक्तेश्वर की बाते।
कौन भूल सकता है दिल्ली के वे दिन, वे राते।।
हम सब ने अपने हाथों क्या उनका वध न किया है?
प्रायश्चित-वेदी पर मृत्युंजय बलिदान दिया है।।

'मुझे सवा सो बरस जगत मे जीना, कुछ करना है'।
उन आदर्शों पर हम सब को चलना या मरना है।।
वह दधीचि दे गया हड्डियां, दूर असुरता कर दो।
सम्प्रदाय के विष को धोकर, स्नेह-सुधा को भर दो।।

तेईस

पार कर लम्बी प्रतीक्षा की अवधि को, आज हम फिर मिल गए ।

आसुओं की धार ले, मैंने न कितनी रात्रियों की कालिमा को धो बहाया ?
साधना मे रंग किसी निष्ठुर हृदय की प्राप्ति को उच्छ्वास विगलित गान गाया ।
धधकती निश्वास ने उड़कर मधुर स्वर मे अलख उनका न कब-कब है जगाया ।।
प्राण की वेदी बनाकर, होम सूनी कामनाओं का अहर्निशि ही रचाया ।।
भाग्य जागे, आ गई यह मधुर बेला, अमकुलित अंतर इसी से खिल गये ।

'हम मिलेगे' मुझे तो था यह अटल विश्वास, हो न इस जन्म या जन्मान्तरों मे ।
और ही स्वर प्रतिध्वनित होता रहा पर सजन के उन सलज अस्फुट नूपुरों मे ।
वीचियों में मिलन का आक्रोश देता था संदेशा खलबलाते से सरों मे ।
मिलन है निश्चित अगर हो ज्वाल दोनों दिशा के उत्सुक विरह व्याकुल उरों मे ।।
मै विलखता, मूक तुम, फिर नियति के बंधन अचानक आज ही क्यों हिल गये ।

चौबीस

प्राणो म तूफान उठा है, क्यो न हिमालय भी झुक जाये ।

एक बार फिर माँ की करुण कराह
कर उठी है आवाहन ।
हम दीवाने बढ़ते जाते उबल
उठा है जीवन-यौवन !
सर्वनाश के अग्रदूत हम
ज्वालामुखी अजय प्रलयंकर !
यो हम दीन-हीन आराधक
किन्तु सृष्टि-भक्षक शिव-शंकर
लहरो मे खलबली भरे हम
लपटो मे फूंके जग सारा !
घुमड़ रहा है साँस-साँस मे
शोणित का जलता फव्वारा ?

रोक-थाम अविचार न जाने, अब बस रण-चंडी मुसकाये ?
प्राणों मे तूफान उठा है, क्यों न हिमालय भी झुक जाये ?

अत्याचारों की चक्की मे पिसना
ही क्या मानव जीवन
क्या अस्तित्व बोध ही बोझिल
क्या अधिकार माँग ही भीषण ?

एक साँस के लिए कहो फिर
हम क्यों दीन बनें इस जग मे
मरने का उन्माद लिए हैं
हमें अमर होना इस मग मे
लो फिर गूंज उठी है इस पल
वही चुनौती, वह रण-भेरी !
अब पलभर विश्राम कहाँ है
बस, चल दिए, हमे क्या देरी ?

आज हमारे तेज-शौर्य पर रवि शशि का गौरव शरमाये !
प्राणों मे तूफ़ान उठा है, क्यों न हिमालय भी झुक जाये !

माँ का वरद-हस्त है हम पर
क्रान्ति धधकता ध्येय हमारा
बहिनों की रक्षा के बन्धन
लिए तकाज़ा 'तोड़ो कारा'
आज़ादी क्या सस्ती मस्ती
वह तो बलिदानों की प्यासी !
साक्षी हैं इतिहास जगत के
साक्षी ताँत्या, साक्षी झाँसी !
'आज़ादी या मृत्यु' मंत्र ले
हम घर को वीरान कर चले ।
युद्ध बाँकुरे नव जवान मर
मिटाने का अरमान भर चले !

घर-घर संदेशा पहुँचा दे, देखो, कहीं न पग रुक पाये ?
प्राणों मे तूफ़ान उठा है, क्यों न हिमालय भी झुक जाये ?

पच्चीस

आज फिर कोई बुलाता
है मुझे बाँहे पसारे !

कौन सा क्षण बीत पाया;
जब कि आवाहन न आया;
चाँद क्या, देखो उधर
साक्षी खड़े हे मूक तारे !

मे स्वयं निरुपाय अक्षम;
और कितना बनूं निर्मम;
आज तक जी भी रहा था
एक उस ही के सहारे !

नित्य किस की सुधि बुलाती;
फिर वही प्रतिध्वनि रुलाती;
भटकता तममय निशा मे
बुझ चुके हैं दीप सारे !

राह मे आँखे बिछाए;
कौन दीपावलि सजाए;
कनखियों से कर रहा है
आज रह-रह कर इशारे !

छब्बीस

आज मृत्यु पा तुम्हे महान हो गई;
स्वर्ग की विधुर निशा विहान हो गई;
सिसक उठी, विवश बनी, विभाविहीन भू;
मूक साधना सजल, सगान हो गई;
अमर मिटा कहीं;
घिरी घटा नहीं;
वह तेज-पुंज एक-एक कण रमा यहीं;
सुप्त देश को
फिर जगा गए।
शांति के सँदेश से गगन कँपा दिया!
एक ज्योति से जहान जगमगा दिया!

तुम प्रमत्त विश्व को जो राह दे गए;
देश, काल, युग को अमर चाह दे गए;
लुप्त क्या हुए कि मनुज स्तब्ध रह गया;
नभ को चीर, एक तड़प-आह दे गए;
कुछ हुआ नहीं;
हृदय अड़ा वहीं;
कह रहा है रोम-रोम तुम यहीं कहीं;
यों न अब छिपो;
दृष्टि में अँटो।
ब्रह्म-अस्त्र मृत्यु पर उलट चला दिया!
एक ज्योति से जहान जगमगा दिया!

बढ़े चले जिधर न रक्त-प्यास रह सकी;
मनुष्यता विनाश की न श्वास सह सकी;
अस्थियाँ बिछा कर जब कि सेतु बन गए;
घृणा-विरोध की न कहीं वायु बह सकी;
विकल रहे शती;
तुम कहाँ व्रती;
सांध्य-लालिमा उतारती हो आरती;
युग बदल गए
पुनः वन्दना।
शेष ऋण मरण से तुमने चुका दिया!
एक ज्योति से जहान जगमगा दिया!

सत्ताईस

घर-घर दीप जले !
प्रकृति-पुरुष इस मंगल-बेला मे
मिल रहे गले !
घर-घर दीप जले !

मदमाती कोयल यों बोली,
'उषा बिखेर चुकी है रोली,
उठ-उठ जाग-जाग री भोली !'
सूनापन तम-तोम सभी
तत्क्षण पथ छोड़ चले !
घर-घर दीप जले !

निखर उठा मधुमास मनोहर,
अवनि छोड़ती शिशिर-धरोहर,
अब वह 'थरथर' बनी 'छरर-छर'
कलियाँ विहँसी, डाल-पात
मुस्काए, फूल फले !
घर-घर दीप जले !

अट्ठाईस

सदियों का रक्त
आज दीखता हुआ पवित्र
युग की मानवता का।
सत्य का, अहिंसा का,
हमने अपने हाथों
दिया उफ़ गला घोंट!

कैसी बर्बरता है,
कितनी पैशाचिकता
दश दिशि चीत्कार रही
बुझा दिया गृह-दीपक!

ईसा का क्रास
बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण
रह रह कर पूछ रहा
मानव इतना निर्मम!

हम जो संताने हैं
शिवा औ' प्रताप की
संस्कृति गर्वोन्मत्त
(स्थापित कर ही देंगे
संप्रदायवाद राज्य)
धिक! मानव का प्रमाद!

सामूहिक प्रायश्चित को
वेदी पर हँसहँस
मिट ही गया महान् !
आजादी का गौरव,
तप, तेज, सिद्धि, ज्ञान !
भारत का वह किसान !

उन्तीस

अब तो मानो मार्ग रुक चला
चलने का अधिकार नही है ।

अपनेपन का भान लिए मैंने कितने संदेश बखेरे,
लिए लालसा का मद आशाओं ने वे अभिशाप न घेरे ।
पता नहीं था जीवन, गति का ही आह्वान लिए बैठा है,
यों उद्भ्रांत खड़ा हूँ, देखा करते हैं सब मेरे-तेरे ।।
खोज रहा प्रतिबिम्ब जगत,
पर मुझ मे वह व्यवहार नहीं है ।।

गीत खो गए, अब गाने की बेला युग के पार हो गई;
प्राणों की मुसकान न जाने क्यों आंसू की धार हो गई ।
संस्मृतियों के मीठे क्षण खींचे जाते रेखाएँ अगणित,
मिट जाना जीवित रहनेकी मादक-सी मनुहार होगई ।।
रजकण कहते चले कि सहना भी
कोई आधार नहीं है ।।

वे स्वप्नों के क्षण धड़कन बन मानो अब भी खेल रहे हैं,
किस आशा पर प्राण श्वास-अभिसार व्यर्थ ही झेल रहे हैं ।
निश्वासे ओठों की सीमा पर लो मुरझाई जाती है,
आत्मा के संकेत जगत् से सदा विमन, बेमेल रहे हैं ।।
उठ उठ कर गिरने वाले का
कोई भी निस्तार नहीं है ।

मिलन-वंशिका विरह-गीत गाने का क्यों अभिनय ले आई,
आज कोकिला आर्तनाद का क्यो विचित्र परिचय ले आई।
कहाँ कुमुदिनी और चन्द्र, यह दूरी ही खलती जाती है,
पुतली एक-एक पग मिलने का सचित्र संशय ले आई।।
अपने की रक्षा न कर सके वह
तो कोई प्यार नही है।।
अब तो मानो मार्ग रुक चला
चलने का अधिकार नही है।।

तीस

यह मशाल
देश अब स्वतंत्र
इस लिए जले !
यह प्रदीप
स्नेह-वर्तिका लिए
चला चले !
और इस प्रकाश में
भविष्य
खिलखिला
उठे !
ढह चुका
शताब्दियों की दासता का
दुर्ग, लो
राख वह
सिसक रही
जो साम्राज्यवाद की,
बन चुकी समाधि
उस विवाद की
प्रमाद की !
चीरती हुई दिगन्त
कह उठी किरण पुनः

आज जन स्वतंत्र है
कि
आज मन
स्वतंत्र है !
आज विश्व शान्ति के
लिए
निहारता इधर,
बालसूर्य देखते
ही
देखते हुआ
प्रखर;
ज्योति जगमगा
उठी
कि
एशिया
मचल उठा,
और शोषितो का
आर्तनाद फिर सबल उठा,
दीप से प्रदीप्त देश सब,
जगी परम्परा;
स्वर्ण की लहर लिए
सजी समुद
वसुन्धरा;
प्राण का प्रदेश
आज पुनः लहलहा उठा;
विहगवृन्द मुक्त कंठ लिए
चहचहा उठा !
प्राची का लाल भाल
लिख गया कथा सजग,
आज जन स्वतंत्र है
कि
आज मन स्वतंत्र है !

इकतीस

दीप जलता, स्नेह का प्रतिदान छलता है!
आज युग की रागिनी में गूंजता है नाश का स्वर।
नींव लाशों की दिए निर्माण में यह कौन तत्पर।।
खिन्न प्रहरी सा किसे मन नित्य ही ललकारता है।
नियति के अभिशाप पर मृदु स्वप्न रह रह हारता है।।
क्षितिज के उस पार ध्वनि आसावरी को गूंजती है।
वञ्चना का स्वर लिए फिर कोकिला क्यों कूजती है।।
स्नेहसूनी वर्तिका जलती, जला करती मधुरतर।
कौन आशा में खिला उत्सर्ग जीवन का विधुरवर।।
कुमुदिनी विकसी यहाँ जब चन्द्रमा उस छोर पर है।
जगत का व्यवधान प्राणों की व्यथा के कोर पर है।।
फिर निशा होगी, कुहुकिनी खड़बड़ा कर स्वर भरेगी।
श्वास में उन्माद ले मानो जगत-निद्रा हरेगी।।
विवश मानवता निहारेगी अपरिचित अश्रु भर कर।
और घुमड़ेगा प्रलय का ज्वार ले कर, मूक अन्तर।।
दूर से कोई बुलाता आ रहा होगा कहीं फिर।
जगमगाने जा रही होंगी लताएँ किसी से घिर।।
दीप जलता, मोह का वरदान पलता है!

बत्तीस

हो चुका सभी समाप्त !

पन्थ की घिरी थकान;
रुद्ध कण्ठ, विवश प्राण;
मुरझ चले सजल गान;
घोर अन्धकार व्याप्त !

भ्रममय विश्वास विफल,
आशा के कुसुम विरल,
तृष्णा मानो मृगजल;
श्वासवायु चिर विषाक्त !

तेतीस

साथ रहो तुम
केवल साथ रहो!

बहुत हो चुका सुधि का दंशन;
रहने दो अपना आश्वासन;
युग-युग अमर रहे चरणार्चन;
पास रहो बस
केवल पास रहो!

रोको अपनी पलक—मिचौनी;
निरखूं भी छवि सलज सलौनी;
एक बार तो हो अनहोनी;
नाथ रहो अब,
केवल नाथ रहो!

क्षमा नहीं, कुछ और दण्ड, पर;
ऐसी निर्मम खीझ न प्रियवर;
त्यागो, या भुज-बन्धन दृढ़तर;
बात कहोजी
केवल बात कहो!

चौंतीस

दृष्टि को जब फेरता हूं
देखता हूं शत्रु है संसार !
स्वप्न होते चूर सारे;
हड़बड़ा उठते सहारे;
पुतलियों में चमक उठते
हैं वही खारे फवारे;
सोचता हूं, सत्य है दुख
विरलता औ, मूक हाहाकार !
दृष्टि को जब फेरता हूं
देखता हूं शत्रु है संसार !

मोह, ममता, सुख कहां है
आवरण झूठे जहां है,
वंचकों के हाथ की कठ-
पुतलियां बनना यहां है;
सिसकता हूं, धधक उठते हैं
हृदय में अहर्निश अंगार !
दृष्टि को जब फेरता हूं
देखता हूं शत्रु है संसार !

दो दिनों मधुराग का स्वर;
पुनः पीड़ा, क्लेश सत्वर;

भार बन जाता प्रणय
जोना पता भू और अम्बर;
घुमड़ता हूं, खोजता क्यों
तप्त मानव, एक दृढ़ आधार !
दृष्टि को जब फेरता हूं
देखता हूं शत्रु है संसार ।

अग्नि कब शीतल सुहाती
प्यास पागल ही बनाती
किन्तु पीकर भी झुलसती
ही रही यह भग्न छाती
उभरता हूं भ्रान्ति ही है
दुर्दशा है यहां केवल प्यार
दृष्टि को जब फेरता हूं,
देखता हूं, शत्रु है संसार !

पैंतीस

मैं ही कब तक गीत सुनाऊं ?
युग बीते मैं ही मैं गाता;
तुमसे प्रतिध्वनि तक कब पाता;
अरे प्रार्थना-लोलुप प्रियतम !
यों कब तक डूबूं, उतराऊं !
कितने यत्न किये पर हारा,
मिला न ममता, मोह, सहारा,
फिर पाषाण-हृदय में कैसे
कोमलता-अंकुर उकसाऊं !
स्तब्ध चरण, आशा बिलमाई,
ठुनक-ठुनक गति स्वयं लजाई,
कभी अकिंचनता पर सिसकूं
कभी स्नेह-मद में इतराऊं !
अगर कभी तुम बनो पुजारी;
तो जानो मेरी लाचारी;
क्यों न देव बन मैं इठलाऊं
या कि सहूं, बिलखूं, पछताऊं !

छत्तीस

उठता फिर दाह !
क्या जीवन विफल हुआ, क्या थोथी चाह !

बोझिल बोझिल यह मन,
शिथिल चरण, चिर भटकन,
मुरझाया क्या, मर ही बैठा उत्साह !

छल है छल, ज्ञान-मुक्ति,
सुख है केवल विरक्ति,
सूना मन, सूना जग, सूनी हो राह !

दो पल का स्वप्न जाल,
मत बँध, वह खड़ा काल,
शान्ति कहां, सुख कैसा, दुख, पीड़ा, आह !

वासवदत्ता-उदयन के
प्रणय-सँदेश लिए,
संघमित्रा-महेंद्र की
पावन जन्म-भूमि,
मालव गण के द्वारा
हुआ शक दल परास्त,
वह क्षण ही संवत् के
आरम्भ का प्रभात,
हर्ष, भास, बाण,
कालिदास ने किया निवास,
अंकित हैं नभ में
अब तक वे पुण्य-वाक्य
यशोधर्मन के महान्
"देश तो उसी का
जो रहता है देश मे,"
अर्पण है मेरा तन-मन,
आज शतियों बाद
गूंजी है फिर वह ध्वनि,
जन-जन का राज्य
तथा केवल जनता स्वामी !
विक्रम के नवरत्नों का
विक्रम साथ लिए
मुंज, भोज, औ'
पृथ्वीवल्लभ की
याद लिए,
आचार्य शंकर का
भारती साध्वी से
हुआ शास्त्रार्थ जहां,
रूपमती के उज्वल
पातिव्रत से सतेज,
मल्हार-पुत्र-वधू
रानी अहिल्या की
जगमग है ज्योति जहां,
वह महान् मध्य-भूमि !

ग्वालियर समीप
आज भी समाधि है स्थित
महिमामयी लक्ष्मी की,
जो विद्युत्-सम तड़की
टकराई, अड़ पाई,
हुई बलिदान,
दे गई स्वदेश को
अपूर्व क्रान्ति-दान !
ह्वेनसांग, टल्मी व
र्बानियर से चिर-र्वणित,
क्षिप्रा-तट उज्जयिनी,
चौबीस-खम्भों का द्वार
आज भी कहता,
विश्व-विद्यालय यह,
दूसरा उसी का द्वार
सीढ़ियों के ऊपर
एक जो ज्योर्तिलिंग
महाकाल महिमामय,
हरसिद्धि-देवी का शिखर
दीखता समीप,
शिला-चित्र दे रहे प्रमाण,
चीन देश से
आते थे छात्र यहां !
बाण भट्ट ने निवास
किया बहुकाल जहां !
आज नई चेतना से
ओतप्रोत मध्य-देश,
कल और देखेगा
नव-वैभव, नया भेष,
काली उर्वर मिट्टी
आवाहन देती है,
सुजला, सुफला भू
औ' हरी-भरी खेती है,
मादकता छलकाता
नव-प्रभात छाया है,
परम्परा जीवित होने
का क्षण आया है !

उन्तालीस

स्नेह-मिलन की प्रथम रात है
तनिक सुनो आखिरी बात है
प्रातकिरण के साथ उदित सूरज देखेगा
दोनों राही चले जा रहे
दो राहों पर
जो शायद विपरीत !
यह चर्चा न सनेह, मान की
और न मन-पंछी के
कँपते पागल पंखों के थकान की,
कँपते बाहु, श्वास कँपता है
बोझिल पलक-जाल झँपता है
आज कहाँ गर्मी, उछाह है
फिर भी तुम भयभीत !
याद आ रहे कल्पित सपने
वे ही जो हो पाते अपने,
निराधार श्वासों की भटकन
अब भी खोज रही क्यों
ऐसा नीड़,
जहाँ पल भर मिल पाती शान्ति,
पागल मन, कैसी विडम्बना
यह भी कोई रीत !

चालीस

बात परसों रात की है
अनमना सा
अधमरा सा
बिस्तरे पर
मैं पड़ा था
कौन जानेगा
किसी ने कब
बना दी यंत्र
सारी देह मेरी !
फाइलें अगणित उठाता
सिर खपाता
जब कि
सूरज फेंकता
पहिली किरण
तब से
कि तारे सजग कर देते
कि देखो रात हो आई !
सुन पड़ी खटपट
उठा देखा
पड़ी थी लाश,
मैं ज्यों हो उठा निर्जीव,

यह क्या, किस तरह !
कोठरी जिसमें कि मैं रहता
उसी का मुख्य स्वामी
सेठ लक्षाधीश
लेटा, इस तरह बेबस;
पुलिस आई,
सुना मैं ने
कि मेरे ही पड़ोसी ने
किया यह घोरतम अपराध;
उसका दोष भी क्या है
कि वेतन आठ रुपये हों
मिले दो-चार महँगाई
कि जीना है कि जीवित मृत्यु !
इस पर भी बढ़ाए यदि किराया
वह धनिक सरदार,
फेंके गटर में सामान
बच्चे काँपते रह जायँ,
मानव भी सहे क्या क्या
बहुत भी श्रेष्ठ है फाँसी,
सजा जो भी मिले
इस नर्क से
अति श्रेष्ठ है
सुखकर
कि जो घोटे गला
रह-रह
मगर जब
मृत्यु बोझिल हो !

इकतालीस

मन की बात सुनाता जाऊँ इतना अवसर शेष नहीं है !
उधर गूंजती है रणभेरी, मिलन-विरह लवलेश नहीं है !

स्वप्नों के आकाश महल मे
हमने आँख मिचौनी खेली
स्नेह कहां था फिर भी अब तक जला करी वर्तिका अकेली !

अस्तप्राय फूलों के उपवन
पतझर ही लानेवाले थे;
हम ही क्या उपराम् बने, वे स्वयं छोड़ जानेवाले थे !

क्रांति-पर्व की इस बेला में
मूक रहे यह प्रेम-कहानी
तूफानों से जूझ सके, उसही को कहते अमर जवानी !

मृग-तृष्णा ही यदि प्राणों
की प्यास बुझानेवाली होती;
क्या फिर मन की सूनी दुनिया, आग लगाने वाली होती !

बोझिल एकाकीपन से अब
कोई भय या क्लेश नहीं है;
मुड़कर दृष्टिपात कर पाऊं, इतना भी आदेश नही ह !

आज आंसुओ मे भी मेरा
उमड़ा ज्वार नहीं बँध पाता;
संघर्षो से टकराता मैं, आगे-आगे बढ़ता जाता !

अंगारों के पथ पर चलना, तो कोई आवेश नही है !
मन की बात सुनाता जाऊं, इतना अवसर शेष नहीं है !

बयालीस

घुमड़ रहा
गीत जो अतीत ने सुनाया था
उस दिन गुरुदेव को
बोलपुर-कुटिया में
"हे कवि ! तुम आज नहीं,
कहां गई राजसभा, कहाँ वह उज्जयिन,
कहां राज-अधिराज शूर विक्रम गए,
आज शेष चिन्ह नहीं दीखता किसी का भी,
लगता तुम [illegible] अलका निवासी थे"
तिमिर चीर दो हजार वर्षों का
भास्वर से
दीप्तमान हो शाश्वत, प्राची मे, विश्व मे ।
खंडहर, मिट्टी-पत्थर क्या न दे रहे प्रमाण ?
रसिकों के अन्तर मे गूंज रहे प्रणय-गान ।
जन-मन का अवचेतन
निरख रहा वाल्मीकि, वेद व्यास, हर्ष, भास,
नभ-भू का विजय-हास,
पथ-दर्शन का प्रकाश,
मानवता के कण-कण की गाथा का विकास ।
संस्कृति-आलोक-स्तम्भ,
रस-हिलोर से अधुना अनुप्राणित सप्तसिन्धु,

भारत के गौरव का स्वर्णिम इतिहास-लास ।
कितने ही कवि आए, आते हैं, आएँगे,
तुम में ही मग्न, स्तब्ध मानो रह जाएंगे,
सोचेंगे आपाधापी-पीड़ित दुनिया को
कैसे तुम दे पाए ऐसी अन्तर्दृष्टि,
शाकुन्तल में मानव का सुख-दुख मूर्तिमान,
तुम मानो धरणी के मानदण्ड-हिमवान,
मेघदूत में खोजें विरही निज स्वर महान ।
उपमा-श्रृंगार-करुण कहां नहीं प्रवहमान ?
प्राकृतिक सुषमा के तुम अद्भुत चित्रकार
क्या देवी विद्योतमा की वाणी का प्रहार,
फूंक गया तुम में यों कुण्ठा को आरपार ?
ऊर्जस्वित हो उठे निद्रा, भय, आहार ।
तुलसी, रसखान तथा घनानन्द-मीरा ने
तुम मे ही क्यों देखी प्रेरणा-झंकार ?
मानस की क्षिप्रा फिर मांग रही एक वर,
युग की तरुणाई, भावी भारत मांग रहा.
इस प्रजातंत्र के नवालोक मे
एक बार
जब शिथिल वृन्त से टूट रहे ह
रुढ़ि-जाल
फिर एकबार आओ भारत मे
कालिदास ।
फिर देखो अपनी अवन्तिका का
नव हुलास ।
आशंका तो है
तुम न कदाचित पहिचानो
पर फिर भी मन में
आने की हठ तो ठानो ।

त्रेतालीस

भूल यदि मुझको सको, भूलो !
चिर निराशा के कुहासे में
घिरा मैं मोह कातर;
ज्योतिरेखा भी कहीं स्थित
न जाना भग्न अन्तर;
क्या हुआ जो देर से भी
आ गए तुम दानतत्पर;
छुनछुनाते चरण अब तो
बंध चुके भुजपाश में, पर
डाल बैठे हैं नयन तो अश्रु-झूला
झूल यदि क्षण भर सको, भूलो !
भूल यदि मुझको सको, झूलो !

एक तुम से दूर, सूना
हो गया ब्रह्मांड सारा;
स्वाति की ले प्यास, युग-
युग से विचारा सिन्धु खारा;
एक आशा. एक सपना

एक आश्वासन हमारा,
एक शशि से वञ्चिता निशि
ने तिमिर अञ्चल पसारा;
वेदना अवगुंठिता है प्राण
छू अगर इस को सको, छूलो !
भूल यदि मुझको सको, भूलो !

चवालीस

तरुणाई बलिदान माँगती
कर पर मस्तक रखे चलो!
आजादी की मंजिल पर
तुम मिट-मिट बढ़ते सखे, चलो!

भूख, गरीबी से छुटकारा पाना ही है;
इस घुटने से श्रेष्ठ जूझ, मर जाना ही है;
जाग उठो, देखो युग ने अँगड़ाई ली है;
शक्ति और साहस समेट जय पाना ही है;
जग प्रकाश पाए यदि
तुम से, तम को पीते रहो, जलो!

लिप्सा, शोषण के चंगुल से मुक्त बनो मन;
टुकड़ों पर कब तक बेचोगे, तन, श्रम, जीवन;
बीत चुका जो उस अरण्य-रोदन में क्या है;
नई सुनहली किरण दे रही तुम्हें निमंत्रण;
यह तो कोई बात नहीं है
छले गए तुम [illegible] छलो!

पेंतालीस

जगत सुख विमुग्ध सतत,
　　मैं ही उन्मन उन्मन !

सोया मेरा सुहाग;
झुलस चुका अङ्गराग;
उमड़ रहा अन्तर में मधुर मरण का पराग;
　　मोह, स्नेह, विरति कहाँ
　　　केवल विछड़न बिछुड़न !

सूखा अब अश्रु-नीर;
उड़ न चले प्राण-कीर;
इस बेला तो छाए प्रेम-नगर का समीर;
　　पहुंच सके उन चरणों में
　　　　यह क्रंदन क्रन्दन !

मेरी उद्भ्रांत चाह;
विवश, रुद्ध, गति-प्रवाह;
अंकित है हृत्तल पर युग-युग के आत्म-दाह;
　　मैं बन्दी श्वास-श्वास, पर
　　　यों बन्धन बन्धन !

छियालीस

ओ जनमन के गायक! अब लिख वह इतिहास अतीत।
एक बार फिर गूंज उठे वह शौर्य, धैर्य, संगीत ।।

कह प्रताप की बात, हो गया जो हंस हंस बलिदान।
और शिवाजी जिसने स्थिर रखी देश की आन ।।

झांसीवाली का गौरव क्या किसी देश को प्राप्त।
अंकित है वह चित्र हृदय पर मानो कल की बात ।।

एक बार फिर बुला, "नील घोड़ा रा ओ असवार।"
मुखरित होवे क्रांति रागिनी, चमक उठे तलवार ।।

गौतम की सुप्रबुद्ध चेतना प्राणिमात्र मे जाग।
ओ जग के सम्राट देश! फिर विहँसे मधुर विहाग ।।

विश्वबन्धुता के संपोषक गुरु रवीन्द्र की याद।
सदियो सींचा करे हमारे प्राणों का उन्माद ।।

तैर रही उस भगतसिंह की आंखों मे तसवीर।
झूल गया जो बलि वेदी पर आगे बढ़कर वीर ।।

इन दो-चार पंक्तियो मे क्या होगा गौरव-ज्ञान।
कौन लिखेगा हिन्द देश के अमिट तप्त बलिदान ।।

इस बेला मन, प्राण अधर पर किसका नाम महान।
कौन कुहासे में प्रकाश की रेखा, पावन ज्ञान ।।

सत्य, अहिंसा, खादी, हरिजन किसके शुचितर रूप।
व्याप्त सभी मे, कौन स्वयं निर्लिप्त, अकाम, अनूप ।।

भूखे, नंगे शोषित जग के एकमात्र आधार।
मोहन! तूने फेर मोहनी मोहे कारागार ।।

बापू के स्वर ने जग को फिर दिया भव्य संदेश।
जिस इंगित पर एक बार फिर जाग उठा यह देश ।।

सैंतालीस

तुम कब मुझे प्यार करती हो?
जीवन की उन्मन घड़ियों में उर का दुसह भार हरती हो,
पर कब मुझे प्यार करती हो?

कर के वैभव की अवहेला;
मैं प्रति पल क्रन्दन से खेला;
सतत प्रतीक्षा अलसाई है
कहाँ मिलन की मादक बेला,
क्रूर जगत के आघातों से पग-पग सुमुखि! व्यर्थ डरती हो!
बोलो कहाँ प्यार करती हो!

थोथी ही है सुख की आशा;
पूरी हो न सकी अभिलाषा;
कुछ चाहूं पर चिर पछताऊं
मैं अपने को बना तमाशा;
फिर मेरी स्मृति से प्रदीप्त हो तुम किस तरह चिर उभरती हो?
यों ही किसे प्यार करती हो?

जग है धूप-छाँह की क्रीड़ा;
तिस पर तुम ले आईं व्रीड़ा;
क्षणिक मुस्कराहट पर भूले
हमें झेलना शाश्वत पीड़ा;
मुझे डूबने दो दीवानी! तुम तो डुबक-उझक तरती हो!
फिर भी मुझे प्यार करती हो?

स्वप्न खिल रहा है मतवाला;
सहना कड़ुआ और कसाला;
जब-जब मैं उतराता आया
तुम ने तत्क्षण दौड़ सँभाला;
देवि! अश्रुधारा के मिस फिर, अब क्यों मेघ सदृश, झरती हो?
क्या सच मुझे प्यार करती हो?

अड़तालिस

ओ हिन्दी के अभिमान,
मैथिली शरण,
तुम्हारा अभिनन्दन!
तुम राष्ट्र-दूत
तुम क्रांति-पूर्ण,
तुम प्रेम-मधुरता-
शान्ति रूप
कवि-गौरव; गर्व-विहीन,
मैथिली शरण,
तुम्हारा अभिनन्दन!
भारत-भारती
तुम्हारा स्वर,
दहला अन्तर,
गूंजा घर-घर,
फूंक दी देश में जान,
मैथिली शरण,
तुम्हारा अभिनन्दन!
तुम सरल-सौम्य
चिर वीतराग,
छलका गीतों में
मधु-विहाग,

भारत माँ के वरदान,
मैथिली शरण,
तुम्हारा अभिनन्दन!
है साध, हजारों
बरस जियो,
इस आर्त देश को
सबल करो,
भारत वालों के प्राण;
मैथिली शरण,
तुम्हारा अभिनन्दन!

उन्चास

मृत्यु का सम्मान करके क्या करोगी ?
पंथ तममय है, सही है
विषमता की चिर कहानी;
कौन से संघर्ष ने हर ली
तुम्हारी नौजवानी;
किन्तु जीना है, जिएँगे हम
हरेंगे शोक जग का;
कंटकों को बीन फेंकेंगे, हमें
डर कौन मग का;
मृत्यु-जीवन धूप-छाया है,
किसे तुम चिर वरोगी ?
सुख नहीं शाश्वत रहा तो
दुःख में स्थिरता कहाँ फिर;
धूप फैलेगी सुबह, इस रात
जब बादल रहे घिर;
मृत्यु को देना निमंत्रण या
सिहरना भूल दोनों;
काल चीरेगा समय-पथ, रुक
न पाएँगे कभी यों;
आज जीवन के समर में
क्या स्वयं से ही डरोगी ?

इक्यावन

पत्र आया था तुम्हारा!
विरह-निशि के वक्ष में वह मोह रोता था विचारा!
मैं लिखूं, क्या क्या लिखूं
कुछ लिख सकूंगा, तुम विचारो;
क्यों न जगती की परिधि में
सांत्वना को साध हारो;
कौन जाने किस घड़ी में हो सके मिलना हमारा!
तड़प उठती याद, शैशव के
दिनों की किसी बेला;
तैरता हूं सिसकनों के
उदधि में व्याकुल अकेला;
भासता है और पीड़क उस समय ब्रह्मांड सारा!
विवशतामय मोह से, यह
प्राण हाहाकार करते;
शून्य उर पर, विगत धूमिल
स्वप्न रह रह कर सिहरते;
मूक पंछी के लिए जीवन बना है आज कारा!
बहुत लिख, कुछ कह न पाया
कुछ न लिख सब कुछ कहूंगा;
खलबली है वीचियों में
पूर्ण बेसुध हो बहूंगा;
जन्म जन्मान्तर कभी तो खोज लूंगा वह किनारा!

पचास

मेरे कवि का संसार मौन!
पीड़ा का भी क्या ओर छोर
उठती रहती बेसुध हिलोर
इस दुनिया में होता न भोर
मेरा तम पारावार मौन!
मेरे कवि का संसार मौन!
आकुल निश्वासें सिहर-सिहर;
झंकृत कर जातीं मेरे स्वर;
चिर स्तब्ध, दग्ध मैं मिलनातुर
मेरी आहों का भार मौन!
मेरे कवि का संसार मौन!
विह्वल स्वप्नों में गीत कहाँ
इस वाणी में संगीत कहाँ
लो गिरी यवनिका, जीत कहाँ
उन्मन प्राणों का प्यार मौन!
मेरे कवि का संसार मौन!